

श्रीमंत शंकरदेव और मुखौटा कला

आदित्य कुमार मिश्र

असम प्रान्त में भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक तथा नववैष्णव धर्म के संस्थापक महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (सन् 1449-1568 ई.) राष्ट्रसंत थे। भारत के मध्यकालीन इतिहास में हम अनेक संतों, भक्तों तथा समाज-सुधारकों के विषय में पढ़ते और सुनते आए हैं, पर यह विडंबना ही कही जाएगी कि भारतीय राष्ट्र के असम प्रान्त में जन्में श्रीमंत शंकरदेव से हमारा परिचय अत्यल्प है। उनके व्यक्तित्व को हम केवल संत, भक्त, कवि, समाज सुधारक जैसी उपमाओं में नहीं बांध सकते। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उनकी बहुमुखी प्रतिभा को ध्यान में रखते हुए सांवरमल सांगानेरिया ने कहा है- "महामहिम शंकरदेव को संस्कृति-पुरुष कहना ज्यादा समीचीन होगा। एक में अनेक गुणों के सामंजस्य का नाम श्रीमंत शंकरदेव है। वह केवल धर्म-प्रतिष्ठापक संत ही नहीं थे और न ही उनकी आध्यात्मिकता केवल धर्म मात्र से ही जुड़ी थी। वे चिंतक, दार्शनिक, शास्त्र मर्मज्ञ, समाज- संस्कारक, मानवतावादी, कवि, संगीतज्ञ, नाट्यकार, नर्तक, चित्रकार, अभिनेता, गीतिकार, गायक-वादक, निर्देशक, मंच व्यवस्थापक आदि के अतिरिक्त वयन विशेषज्ञ भी थे।"¹

सन् 1481 ई. में श्रीमंत शंकरदेव अपने 17 शिष्यों के साथ प्रथम तीर्थाटन के लिए निकले। अपनी प्रथम यात्रा में उन्होंने वाराणसी, प्रयाग, गोकुल, वृंदावन, गोवर्धन, मथुरा, कुरुक्षेत्र, रामहृद, सीताकुंड, अयोध्या, द्वारका, बद्रीकाश्रम, जगन्नाथपुरी आदि प्रमुख तीर्थों की यात्रा की। यह प्रथम तीर्थ यात्रा ही उस 'नव वैष्णव भक्ति आंदोलन' की दिशा में पहला कदम था, जिसकी प्रतिष्ठा बाद में उनके द्वारा पूरे असम प्रान्त में हुई। 1550 ई. में उन्होंने अपनी दूसरी यात्रा 120 शिष्यों के साथ की। इस यात्रा में उनके योग्य शिष्य माधवदेव भी उनके साथ थे। श्रीमंत शंकरदेव की यात्रा दृष्टि के महत्व को व्याख्यायित करते हुए डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने कहा है कि "भ्रमण में शंकरदेव को भारतवर्ष की विविधता, अनेकता और विराटता में जिस एकता (अद्वैतता) का प्रत्यक्षीकरण हुआ, मानो वही जगत की अनन्तता और विष्णु-कृष्ण की विराटता व सर्वशक्तिमत्ता की प्रतिमूर्ति थी और वही 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' के बोध में परिणत हो उनकी सिद्धि बनी। विराट राष्ट्रपुरुष भगवान कृष्ण की शरण उन्हें स्वीकार्य हुई।"²

अपनी प्रथम तीर्थ यात्रा से लौटने के उपरांत उन्होंने बरदोवा में प्रथम सत्र की स्थापना की। सत्रों की स्थापना उन्होंने अपने सिद्धान्त "एकशरण नाम धर्म" के प्रचार-प्रसार के लिए की। कालांतर में उनके अनुयायियों द्वारा पूरे असम में इन सत्रों का विस्तार हुआ। असम में सत्र केवल धार्मिक संस्था के रूप में ही नहीं अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था के रूप में भी अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता रखते हैं। सत्रों के भीतर भक्त और शिष्य सत्राधिकार के मार्गदर्शन में आध्यात्मिकता, नैतिकता, सात्विकता जैसे पवित्र जीवनमूल्यों

का अभ्यास करते हैं तथा विष्णु या कृष्ण की उपासना करते हैं। असम के सत्र एक स्वावलंबी संस्था की भांति हैं जिनकी अपनी मौलिक विशेषताएं हैं।¹³

सत्र एक तरफ विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों के संपादन स्थल हैं तो दूसरी तरफ अनेक कलारूपों के केंद्र भी। सत्रों के भीतर विभिन्न प्रदर्शनकारी कलाओं जैसे नृत्य, नाट्य, गायन-वादन आदि की शिक्षा दी जाती है। सत्र के भीतर इन कलारूपों का अभ्यास श्रीमंत शंकरदेव के समय से ही चला आ रहा है। उन्होंने कला को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम माना था। नववैष्णव भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कई कलारूपों को जन्म दिया। वे स्वर, ताल, लय, राग आदि सांगीतिक तत्वों के कुशल विशेषज्ञ थे। उन्होंने पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर नाटकों की रचना की। इन नाटकों को 'अंकिया नाटक' कहा जाता है। नाटकों के प्रदर्शन में उन्होंने मुखौटों के प्रयोग की शुरुआत की जो मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के किसी भी संत कवि का प्रथम मौलिक प्रयोग था।

मुखौटा कला असम के कलात्मक वैशिष्ट्य का उत्कृष्ट रूप है। असम के विभिन्न लोक कलारूपों में मुखौटा कला की समृद्ध विरासत है। इस कला का इतिहास महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव प्रवर्तित नव वैष्णव आंदोलन से जुड़ा है। शंकरदेव असम के संदर्भ में विभिन्न कलाओं के जन्मदाता कहे जाते हैं। उन्हें लोक एवं शास्त्र दोनों का गहरा अनुभव था। नव वैष्णव धर्म को विस्तार देने के लिए उन्होंने नाटकों की रचना की। इन नाटकों को असम में अंकिया नाट्य की संज्ञा दी जाती है। इन नाटकों की रचना उन्होंने राम और कृष्ण के पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर की। इन नाटकों की रचना के साथ शंकरदेव ने इनका प्रदर्शन भी किया। प्रदर्शन के समय उन्होंने विभिन्न कलात्मक अभिधानों का भी उपयोग किया। वे नाटकों के प्रदर्शन विधि को जीवंत एवं प्रभावकारी बनाना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने मुखौटों की उपयोगिता को प्राथमिकता दी। अपने नाटकों में विभिन्न पौराणिक चरित्रों के अभिनय को सजीव रूप देने के लिए उन्होंने मुखौटों के प्रयोग की नींव डाली। उन्होंने स्वयं मुखौटों का निर्माण प्रारंभ किया। अपने पहले नाटक "चिहन यात्रा" (वर्तमान में अप्राप्य) में मुखौटों का सर्वप्रथम प्रयोग किया।¹⁴

मुखौटों के प्रयोग के पीछे उन्होंने अपनी लोकाभिमुखता का परिचय दिया। नाटकों के प्रदर्शन में मुखौटों की अनिवार्यता उनकी मौलिक देन है। साधारण जनसमाज जिसे 'लोक' कहते हैं, उसका नाटकों के प्रति सीधा झुकाव बिना जीवंतता एवं आकर्षण के संभव नहीं था। पौराणिक पात्रों के समान अभिनय एवं दर्शनीयता न होने के कारण लोग स्थिर एवं एकरस हो सकते थे, इसलिए शंकरदेव ने इस कला का प्रवर्तन किया।

मुखौटों की परंपरा शंकरदेव के समय से प्रारंभ होकर अब तक प्रवाहमान है। मुखौटों के प्रयोग से नाटकों के प्रति लोकाभिरुचियों का विस्तार हुआ और लोकधर्म संस्कृति का विकास हुआ। मध्यकाल में शंकरदेव प्रवर्तित नव वैष्णव भक्ति आंदोलन के विस्तार में विविध कलाओं की महती भूमिका रही। मुखौटा कला के

साथ ही, नृत्य कला, गायन कला, वादन कला, हस्त कला आदि कलाओं का विकास भी भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में हुआ। मुखौटों का उपयोग नाट्य कला के संबंध में एक विशिष्ट देन थी। अंकिया नाटकों के अतिरिक्त इनका प्रयोग रास उत्सव के समय में भी होता है। असमिया समाज अपने पारंपरिक अनुष्ठानों एवं उत्सवों में भी इनका उपयोग करता है। इनकी उपस्थिति अभिनय को जीवंत एवं प्रभावशाली बनाती है।

मुखौटों के निर्माण की आवश्यकता क्यों पड़ी यह प्रश्न विचारणीय है। मानवीय चरित्र एवं प्रकृति में बहुत कुछ ऐसा है जिसके अभिव्यक्त होने में भाषा और चेहरे के रंग चूक जाते हैं। इस स्थिति में मुखौटे का कलात्मक उपयोग वह नाटकीय अर्थ रचता है जिसके कथ्य का संप्रेषण अन्य साधनों से संभव नहीं हो पाता। नाटकों में प्रयोग में लाने पर ये मुखौटे जहाँ एक ओर पौराणिक और अध्यात्मिक अर्थ रचते हैं वहीं दूसरी ओर नाटकीयता के तत्वों को भी गहराई प्रदान करते हैं। मुखौटे मनुष्य की कल्पना एवं सृजनात्मकता के उत्कृष्ट नमूने हैं यह अभिनेता को वह आवश्यक दूरी एवं छिपाव देते हैं जिसके बिना किसी विशेष बात की अभिव्यक्ति असंभव होती है।

अंकिया नाट्य (भाओना) में मुखौटों का बहुतायत मात्रा में प्रयोग होता है। रास उत्सव में रास भाओना का प्रदर्शन भी होता है। इन नाट्य उत्सवों में मुखौटों की बड़े पैमाने पर मांग होती है। नाट्य प्रदर्शनों में विभिन्न पौराणिक पात्रों एवं पशु-पक्षियों की भूमिका का निर्वहन पात्र मुखौटों के माध्यम से करता है। इस समय मुखौटा बनाने की कला अंकिया नाट्य एवं रास उत्सव का अविभाज्य अंग है। असम के सत्र सक्रिय रूप से इसमें अपना सहयोग दे रहे हैं सामागुरी सत्र की सक्रियता के अतिरिक्त अब अन्य सत्रों के भक्त एवं शिष्य इस कला को सीख रहे हैं एवं अधिक से अधिक मुखौटों का निर्माण भी कर रहे हैं।

मुखौटों को बनाने की विधि-मुखौटा बनाने के लिए मुख्य रूप से बांस, बेंत, कपड़े और मिट्टी आदि का उपयोग किया जाता है। प्रारंभ में मुखौटों का निर्माण केवल लकड़ी से किया जाता था, जिसमें रंगों से विभिन्न आकृतियां उकेरी जाती थीं। कालांतर में इन मुखौटों को बनाने के लिए बांस, बेंत, सूती कपड़े, गोबर और मिट्टी का इस्तेमाल किया जाने लगा। बांस और बेंत के प्रयोग से मुखौटे काफी हल्के और उपयोगी होने लगे। मुखौटा बनाने के लिए सबसे पहले कच्चे बांस को 6 से 7 दिनों के लिए पानी में भिगोकर रखा जाता है। ऐसा करने से बांस में लचीलापन तो आता ही है साथ ही बांस के टुकड़ों को कीटों के हमले से बचाया जाता है। अगले चरण में बांस को आवश्यकतानुसार विभिन्न खण्डों में विभाजित किया जाता है। पतले और लचीले टुकड़ों की मदद से मुखौटे के प्रारंभिक ढांचे को तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक जोड़ पर बेंत की सहायता से ढांचे को गठित किया जाता है। मूल कंकाल तैयार होने के बाद इस पर सूती कपड़े को गीली और चिकनी मिट्टी में भिगोकर चिपकाया जाता है। मूल ढांचे पर पहली परत मिट्टी में भीगे इस सूती कपड़े की ही होती है। दूसरे चरण में इसके ऊपर गोबर और मिट्टी की दूसरी

परत चढ़ाई जाती है। मुखौटा जब सूख जाता है इसके बाद तीसरे चरण में मुखौटे को उसका वास्तविक रूप दिया जाता है। यह चरण महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसमें मुखौटे का चरित्र निर्धारण करता है। मुखौटे को जिस भी रूपाकृति में ढालना है, उसका निर्धारण इसी चरण में होता है। कलाकार मुखौटे में आंख, नाक, कान, मुँह, भ्रुकुटी, मूँछें, दांत आदि का निर्माण करता है। इस विधि में वह सूती वस्त्र को ही मिट्टी और गोबर के मिश्रण में भिगोकर चिपकाता है। चौथे चरण में मुखौटे को विभिन्न रंगों से रंगा जाता है। चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप मुखौटे पर रंग से कलाकारी की जाती है। किसी राक्षस का मुखौटा होगा तो उसके क्रोधित और आवेशित भावों को कलाकार उकेरता है। इसी तरह किसी पक्षी, वानर या देवी-देवता के मुखौटे को उसकी भाव-भंगिमाओं के अनुसार रूप दिया जाता है। पहले मुखौटों की रूपसज्जा के लिए प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था; लेकिन अब प्राकृतिक रंगों का प्रयोग बहुत कम मात्रा में होता है, इसका कारण प्राकृतिक संसाधनों का कम मात्रा में उपलब्ध होना है। इस विषय में कलाकारों का कहना है कि अब प्राकृतिक रंग सहजता से उपलब्ध नहीं होते हैं और बाजार में अगर उपलब्ध भी होते हैं तो उनका मूल्य अधिक है। वर्तमान में अधिकांशतः कृत्रिम रंगों का उपयोग ही मुखौटों के निर्माण में किया जाता है। मुखौटों के निर्माण में 7 से 10 दिन तक का समय लग जाता है। मुखौटों को बनाने में लगने वाला समय इस बात पर निर्भर करता है कि मुखौटे का आकार-प्रकार क्या है।

सत्रों के भीतर निर्मित होने वाले मुखौटे मुख्य रूप से तीन प्रकार के बनाये जाते हैं। पहले प्रकार को 'मुख-मुखा' कहते हैं। इस तरह के मुखौटों का निर्माण और उपयोग अधिक होता है। ये केवल चेहरे को ढंकते हैं। इस प्रकार के मुखौटों में हनुमान, बाली, सीता, ब्रह्म, मारीच, त्रिसरा, खर-दूषण आदि के मुखौटे आते हैं।

दूसरे प्रकार के मुखौटों में 'लोटोकड़ मुखा' आता है। इन्हें 'हैंगिंग मास्क' भी कहा जाता है। ये आकर में मुख-मुखा से बड़े होते हैं। शरीर के अंगों जैसे-हाथ, पांव, मुँह, आंखों को ध्यान में रखकर इनका निर्माण किया जाता है। ये गतिशील होते हैं। गरुड़, जटायु, अघासुर, हिरण, मोर, ऐरावत हाथी आदि इसी तरह के मुखौटे हैं।

तीसरे प्रकार के मुखौटों को 'बर अथवा चो मुखा' कहते हैं। इस तरह के मुखौटे आकार में सबसे बड़े होते हैं और लगभग पूरे शरीर को ढंकते हैं। ये सिर या शरीर के किसी अन्य बड़े भाग को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं। इनका निर्माण सामान्यतः दो भागों में किया जाता है। पहला गर्दन से सिर का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरा हिस्सा शरीर का प्रतिनिधित्व करता है। यह हिस्सा हाथों से पैर तक फैला होता है। चो-मास्क की लम्बाई दो से साढ़े तीन मीटर तक होती है। चो मुखा आकार में भले ही बड़े होते हैं परंतु इन्हें बहुत हल्के वजन का बनाया जाता है। इस प्रकार के मुखौटों में नृसिंह, रावण, कुम्भकरण, बकासुर, नरकासुर आदि के मुखौटे आते हैं।

मुखौटा बनाने वाले कलाकार रामायण, महाभारत और पौराणिक महाकाव्यों के आधार पर मुखौटों का निर्माण करते हैं। कलाकार रावण, कुम्भकरण, नरसिंह, खर, दूषण, बकासुर, तारकासुर, धनुकासुर, अघासुर, हनुमान, बालि, सुग्रीव, जटायु, गरुड़ आदि चरित्रों के मुखौटे बनाते हैं। इन विभिन्न पौराणिक चरित्रों के मुखौटे बनाने के लिए कलाकार इनकी पुराकथाओं का बारीकी से अध्ययन करते हैं बालि और सुग्रीव के मुखौटे को सामान्य व्यक्ति एक ही मानेगा परंतु उनमें सूक्ष्म अंतर होता है "जिसका ध्यान कलाकार मुखौटों के निर्माण के समय रखते हैं। रास उत्सव के समय ये मुखौटे अधिक खरीदे जाते हैं क्योंकि पूरे माजुली में पचास से अधिक स्थानों पर इन मुखौटों का प्रदर्शन होता है।"⁵

इन मुखौटों की माँग केवल असम तक सीमित है ऐसा नहीं है। माजुली में निर्मित इन मुखौटों की माँग विदेशों में भी है। ब्रिटिश संग्रहालय में यहाँ के मुखौटे दर्शकों के लिए आकर्षण का केंद्र हैं। विदेशों से प्रतिवर्ष कई सैलानी यह कला सीखने भी आते हैं। अकेले माजुली में ही सामागुरी सत्र, नरसिंह सत्र, कमलाबारी सत्र, बिहिमपुर सत्र जैसे सत्रों में मुखौटा कला का अभ्यास और प्रशिक्षण हो रहा है। सामागुरी सत्र सर्वाधिक पुराना सत्र है जहाँ से मुखौटा कला प्रारम्भ हुई। मुखौटों के निर्माण एवं कला के प्रति पूर्ण समर्पण के लिए सामागुरी सत्र कई राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हो चुका है। सत्र के प्रसिद्ध मुखौटा कला डॉ. हेमचंद्र गोस्वामी (गुरुजी) आज भी मुखौटों के निर्माण एवं प्रशिक्षण कार्य में लगे हुए हैं। हेमचंद्र गोस्वामी के अतिरिक्त स्वर्गवासी कुशाकांत गोस्वामी भी प्रसिद्ध मुखौटा कलाकार हुए हैं जिनके मार्गदर्शन में कई लोगों ने मुखौटा शिल्प की शिक्षा ली। यहाँ निर्मित मुखौटे भाओना के अतिरिक्त विभिन्न लोकानुष्ठानों एवं त्योहारों पर भी पहने जाते हैं। मुखौटे को धारण करने के बाद व्यक्ति अपने मूल चरित्र को खोकर नए चरित्र में अपने को महसूस करता है। पौराणिक चरित्रों की कल्पना करके परकाया प्रवेश की अनुभूति प्रदर्शन को रोचक एवं प्रभावशाली बनाता है। प्रदर्शन के अवसर पर दर्शकों में चरित्र के प्रति श्रद्धा, घृणा, क्रोध आदि मनोभावों का आलोड़न-विलोड़न होता रहता है। नायक एवं सत्कर्म कर रहे चरित्र के प्रति श्रद्धा एवं देवत्व भाव का विकास होना स्वाभाविक है, इसी प्रकार राक्षसी वृत्ति धारण किए चरित्रों के प्रति क्रोध एवं घृणा का भाव पनपना स्वाभाविक है। यह मुखौटों के प्रयोग की सफलता ही है कि असमिया जनमानस आज भी भाओना (अंकिया नाटकों की प्रदर्शन पद्धति) के समय अपने दैनिक जीवन से समय निकालकर प्रतिभाग करता है। इनके प्रदर्शन में सजीवता मुखौटों के कारण ही आती है। असम के लोगों में आज भी नाट्य प्रदर्शनियाँ आकर्षण का विषय बनी हुई हैं, इसका कारण लोगों का अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति सचेत होना ही कहा जाएगा। मुखौटा कला का एक अन्य आयाम हस्त कला के विकास से जुड़ा हुआ है। हस्त कला के विकास में मुखौटा एक उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है। ये मुखौटे स्वदेशी संस्कृति के उच्चतम नमूने तो हैं ही, साथ ही पांच शताब्दियों पुरानी सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के नववैष्णव आंदोलन और उसके प्रभाव में विकसित हुई यह कला आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है।

मुखौटा शिल्प कृषि संस्कृति का भी अभिन्न अंग है। आदिवासी समाज और विभिन्न जनसमुदायों में मुखौटे उनकी आस्था और विश्वास से जुड़े हैं। असम में इनकी प्रसिद्धि तो है ही, इसके साथ ही देश के अन्य भागों एवं विदेशों में भी ये आकर्षण का विषय बन रहे हैं। आरम्भ में ये मुखौटे लकड़ी एवं धातुओं से निर्मित किये जाते थे। इन मुखौटों में आज की भांति आकर्षण एवं नक्काशी नहीं होती थी। कालांतर में शंकरदेव के अनुयायी शिष्यों ने दिनोंदिन इस कला में परिष्कार एवं सुधार किया। आज के मुखौटों में विविधता भी है और सौंदर्य भी।

मुखौटा कला के क्षेत्र में माजुली का सामागुरी सत्र विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ पर मुखौटा कलाकारों की एक लंबी परंपरा रही है। मुखौटा कला के क्षेत्र में इस सत्र के ऐसे ही एक प्रमुख कलाकार हैं- डॉ. हेमचंद्र गोस्वामी। हेमचंद्र गोस्वामी मुखौटा कला के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित कलाकार हैं। हेमचंद्र जी के निर्देशन में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'भाओना' का प्रदर्शन होता रहता है, जिसमें मुखौटों का बहुतायत मात्रा में प्रयोग होता है। कला और संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए वर्ष 2017 में गौहाटी विश्वविद्यालय ने हेमचंद्र गोस्वामी को डॉक्ट्रेट की उपाधि से सम्मानित किया। इसके अलावा डॉ. गोस्वामी को 2018 के संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया जा चुका है। जनवरी 2018 में हेमचंद्र जी के निर्देशन में विभिन्न कलाकारों ने भारतीय गणतंत्र दिवस के अवसर पर माजुली के मुखौटों की झांकी निकाली थी, जिसमें इन मुखौटों को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ था। हेमचंद्र गोस्वामी पिछले कई वर्षों से इस कला का प्रशिक्षण सत्र में शिष्यों और देश-विदेश से आने वाले पर्यटकों को दे रहे हैं।

पिछले कई वर्षों से हेमचंद्र गोस्वामी इस महान कला को जीवित रखते हुए नवोदित कलाकारों को इसकी समृद्ध विरासत का प्रशिक्षण देते आ रहे हैं। ये मुखौटे स्वदेशी कला और संस्कृति के उच्चतम नमूने हैं और साथ ही इस कला के माध्यम से राष्ट्र की सांस्कृतिक निरंतरता को भी विश्वस्तर पर पहचान मिल रही है। दिनों-दिन इन मुखौटों की मांग विदेशों में बढ़ती जा रही। पूरी तरह प्राकृतिक संसाधनों से बने ये मुखौटे ब्रिटिश संग्रहालय में भी अपनी जगह बनाये हुए हैं, जहाँ वे पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि असम में मुखौटा कला का इतिहास श्रीमंत शंकरदेव के नववैष्णव आंदोलन से बहुत गहराई से जुड़ा हुआ है। शंकरदेव ने कला और संस्कृति सहित विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रयोग किए जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

संदर्भ:-

1. लोहित के मानस पुत्र, सांवरमल सांगानेरिया, भूमिका हेरिटेज फाउंडेशन, गुवाहाटी, द्वितीय संस्करण, 2011
2. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक, डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ- 11

3. The Neo- Vaisnavite Movement and the Satra Institution of Assam, S.N. Sharma, Department of Publication, Gauhati University, 1966, P.103
4. Sunil Kothari, Sattriya Classical Dance of Assam, The Marg Foundation, mumbai, 2013, P. 82
5. The Rich Heritage of Island Majuli, Amulya Chandra Borah, Digitech Printers, Majuli, 2017, P.93

ई. मेल -mishraaditya336@gmail.com